नव-उपनिवेशिक संस्कृति के दौर में नव-वामपंथी कविता

षैजू के
शोधार्थी, कोच्चिन विश्वविद्यालय

सारांश
विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के आन्तरिक मामलों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किये जाने वाले हस्तक्षेप को नव-उपनिवेशवाद (Neo-colonialism) कहा जाता है। नवउपनिवेशवाद की धारणा के माननेवालों का सोचना है कि पूर्व में उपनिवेशी शक्तियों ने जो आर्थिक ढांचा बना रखा था उनका अब भी उन उपनिवेशों पर नियन्त्रण करने में इस्तेमाल किया जा रहा है।यूरोप के देशों ने एक लम्बे समय तक एशिया और अफ्रीका के देशों पर अपना साम्राज्यवादी जाल फेंककर उनका राजनीतिक व आर्थिक शोषण किया लेकिन उन देशों में उभरने वाले स्वतन्त्रता आन्दोलनों ने साम्राज्यवादी देशों के मनसूबों पर पानी फेर दिया। धीरे-धीरे एशिया और अफ्रीका के देश एक-एक करके साम्राज्यवादी चुंगल से मुक्ति पाने लगे। जब साम्राज्यवादी शक्तियों को अपने दिन लदते नजर आए तो उन्होंने औपनिवेशिक शोषण के नए नए तरीके तलाशने शुरू कर दिए। उन्होंने इस प्रक्रिया में उन देशों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए आर्थिक साम्राज्यवाद का सहारा लिया। स्वतन्त्र होने के बाद नवोदित राष्ट्र इस स्थिति में नही रहे कि वे अपना स्वतन्त्र आर्थिक विकास कर सकें। उनके आर्थिक विकास में सहायता के नाम पर विकसित साम्राज्यवादी देशों ने डॉलर की कूटनीति (डॉलर डिप्लोमैसी) का प्रयोग करके उनकी अर्थव्यवस्थाओं पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया और धीरे-धीरे वे नए साम्राज्यवाद के जाल में इस कदर फंस गए कि आज तक भी वे विकसित देशों के ही अधीन हैं। इस व्यवस्था को नव-उपनिवेशवाद के नाम से जाना जाता है।इस नव उपनिवेशवाद के नकारात्मक पक्ष को ही नव वामपंथी कविता दर्शाती हैं।

बीज शब्द
नव वामपंथी दृष्टि,भूमंडलीय अमानवीय संस्कृति ,समाज में व्याप्त पशुता,प्रतिरोधी स्वर,संवेदनहीनता ,प्रौद्योगिकी का चकाचौंध,साम्राज्यवाद इत्यादि |

रचना के स्तर पर कविता की स्वायत्तता पर प्रश्न चिन्ह लगाना कठिन है। प्रत्येक रचना की ऐसी स्वायत्तता होती है ।कविता की स्वायत्तता की अपनी महती भूमिका है। उसमें कविता की भाषा, संस्कृति के साथ उसके सरोकार और उसके इतिहास तथा अन्य भाषाएं व संस्कृति संलग्नताएं और उसके इतिहास का समाविष्ट होना सहज ही मान लिया जाएगा। अक्सर यह शिकायत आजकल सुनने को मिलती है कि कविता के पाठकों की संख्या कम होती जा रही है। उसके कई कारण बताए जाते हैं । लेकिन उसका मुख्य कारण कविता के लिए उपलब्ध प्रतिकूल वातावरण ही है ।आज की धन केंद्रीय संस्कृति में या बाजार केंद्रित सामाजिक व्यवस्था में कविता को प्रमुख ना मानना स्वाभाविक है । सिर्फ कविता ही नहीं बल्कि असंख्य मानवीय उन्मुखताएं और अभिव्यक्तियां अनदेखी या अनसुनी होती जा रही हैं। कारण यह है कि बहुसंख्यकों के समाज को प्रभुत्ववादी अल्पसंख्यकों ने अपने अधीन में कर लिया है।आज भी नए साम्राज्यवाद का एक अदृश्य हाथ हमें नियंत्रित कर रहा है। बाजार केंद्रीय संस्कृति ने गतिशील संस्कृति को ध्वंसित किया है ।

हमारी गतिशील प्रथमत: मूल्यापेक्षी है। मनुष्य एवं मनुष्येतर जीवन और व्यवस्था को उसमें प्रमुख स्थान प्राप्त है ।परंतु बाजार केंद्रित संस्कृति ने अपने विकल्पों को सुस्थापित करने हेतु मनुष्य धर्मी दृष्टि के स्थान पर मनुष्य विरोधी दृष्टि को विकसित किया है पर उसका बाह्य रुप मनुष्य विरोधी नहीं है । बाजार केंद्रीय नई संस्कृति ने सिर्फ वाणिज्य के क्षेत्र को ही नहीं बल्कि शिक्षा, समाज कल्याण, स्वास्थ्य और विज्ञान को भी प्रभावित किया है ।इन सभी क्षेत्रों के कार्यकलाप बाहरी शक्तियों के इशारे पर चल रहे हैं। आज विकास की परिभाषा भी बदल गई है। विकास का तात्पर्य आंशिक विकास है। समग्र विकास की परिकल्पना आज मद्धिम पड़ गई है ।हमें कहना पड़ रहा है कि हमारे देश ने अपने राष्ट्रपिता गांधी जी को पूरी तरह से हाशिए पर छोड़ दिया है। प्रत्येक देश की नीतिगत योजनाओं में देश की भूमिका महत्वपूर्ण होती है ।अन्यथा हम जनतंत्र व्यवस्था का ढिंढोरा पीटने के हकदार नहीं है। वैश्वीकरण के नाम पर हमारी नीतिगत बातों में भी वर्चस्ववादी सत्ताओं की भूमिका ही रही है ।पूरी प्रौद्योगिकी स्ट्रेटजी उसी के अनुकूल विकसित की जाती है ।ऐसी स्थिति में यह सोचा नहीं जाता है कि देश का स्वत्व कितना महत्वपूर्ण है ।वस्तुत: देश का स्वत्व सबसे महत्वपूर्ण है । हमारी संस्कृति उसी पर आधारित है। देश का समग्र विकास,देश की जनतांत्रिक व्यवस्था की पारदर्शिता,न्यायिक व्यवस्था उसी पर केन्द्रित है। स्वत्व को अवहेलित करके विकास के आंकड़ों को रेखांकित किया जा सकता है,लेकिन समूचे जनहित को रेखांकित नहीं किया जा सकता।

कविता दुनिया भर की चिंताकुल मानसिकताओं को मुखर कर देने वाली वैकल्पिता है ।यह कविता मात्र नहीं है। नव वामपंथी कविता में हमारा इतिहास निहित है।हर युग में कविता का इतिहास में बदलने के उदाहरण मिलते हैं ।आज इस भूमिका में कविता को रहना ही पड़ता है क्योंकि हमारा समय परिभाषेयता की सीमाओं को लांघ चुका है।

वैश्वीकरण का सबसे बड़ा खतरा लघु संस्कृतियों का ध्वंसित होना है। आम जनता की समस्त अभिव्यक्तियों को अर्थहीन बना लेने की ताकत वह रखता है । ऐसे एक वातावरण में चाहे कविता हो, अर्थपूर्ण अन्य साहित्यिक गतिविधियां हो, स्थानीय भाषाओं और उनकी लघु संस्कृतियां हो, मानवीय चिंताओं को स्थानीयता के स्तर से जोड़कर पुनः वैश्विक स्तर तक गंभीरतापूर्वक लेने वाली दृश्य माध्यम हो या असंख्य लोक कथाएं हो, सभी अप्रमुख होने की स्थिति में है । पूंजी केंद्रित विकास में इनका कोई स्थान नहीं होता है । लेकिन संस्कृति के सतत विकास में इनका जितना योगदान है उतना किसी का नहीं है। संस्कृति का सतत विकास जीवन निरपेक्ष विकास नहीं है ।वह हमारे स्वत्व सापेक्ष विकास का अविभाज्य घटक है ।अतः संस्कृति के गतिशील विकास में ही जीवन की सामान्यताओं का विकास संभव है ।उसके लिए जो भी तत्व बाधक हैं उन को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया जाना चाहिए । नव उपनिवेशक संस्कृति आज मजबूत होती जा रही है ।वैश्वीकरण इसका पोषण कर रहा है ।हमारे सांस्कृतिक स्वत्व के ध्वंस में नई उपनिवेशिकता का हाथ है ।स्वत्व के ध्वंस के रूप में एक घना कोहरा छाये जा रहा है जिसे सामान्य भाषा में परिभाषित करना भी मुश्किल है । लेकिन हमारा पूरा तंत्र एक अयाचित स्थिति से गुजर रहा है । जिसने हमारी लघुसंस्कृतियों को तहस-नहस किया है। आज वैश्वीकरण और उपनिवेशक संस्कृति पर्यायवाची है। उपनिवेशवाद ने सब किसी पर अपना कब्जा कर लिया है । वह सरल ढंग से हमें उगल रहा है। हमारी अभिरुचियों एवं उन्मुख्ताओं पर वह हावी है । एक तरह की उन्मत्त अवस्था है।आज की भूमंडलीकृत संस्कृति में यह एक सरल सी सदिच्छा है।यह एक सख्त दृष्टि है जिसको बचाए रखने का मतलब है मानवीय संस्कृति का प्रतिरोध।जब हमारे लघु समाजों में ऐसी प्रतिरोधी क्षमता नहीं रहेगी तो भूमंडलीकृत संस्कृति का व्यापान अनियंत्रित रहेगा। भूमंडलीकरण पर गंभीरता पूर्वक विचार करें तो हमें अपनी वैचारिक अराजकता का पता चल ही जाएगा। इस वैचारिक अराजकता को नव वामपंथी कवि कुमार अंबुज अपने 'अतिक्रमण' शीर्षक संग्रह में लिखते हैं -

"यों तो मैं खुश हूं
परंतु मुझे शर्म आती है
अपनी समकालीन कायरता पर
मैं शब्दों से काम चलाता हूं
परंतु मुझे अब कुछ दूसरे हथियार भी लगेंगे ।"[1]

इसमें 'समकालीन कायरता' स्वयं में निहित वैश्वीकृत संस्कृति को ही द्योतित करती हैं ।यह हमारी सामाजिकता की सबसे अधिक विकृत प्रवृत्ति है । इसके रहते वैश्वीकरण को बाहरी शक्तियों के अतिक्रमण के रूप में देखना अनुचित है ।हम इस आक्रमण के शिकार हो चुके हैं ।इसलिए एकांत श्रीवास्तव अपने 'हस्ताक्षर ' शीर्षक कविता में अपने देश और संस्कृति की बिक्री की बात उठाते हैं -

" सिर्फ एक हस्ताक्षर किया जाता है
और खो देते हैं हम
अपना देश। "[2]

वैश्वीकरण ने प्रतियोगिता को सबसे प्रमुख माना है।हर दो इकाइयों के बीच में प्रतियोगिता है ।ईर्ष्या उसका अभिन्न अंग है। उसमें सबसे पहले संकट मडराता है मानवीयता पर,आज

की वैश्वीकृत संस्कृति में यह त्रासद नहीं है ।सब कुछ मान्य है।सब कुछ स्वीकार्य है। वैश्वीकृत संस्कृति में युद्ध मान्य सिद्ध हो गया है। इसलिए ज्ञानेंद्र पति ने अपनी कविता 'यह पृथ्वी क्या केवल तुम्हारी है' में इस ध्वंसक संस्कृति का प्रतीकीकरण यों किया है -

"एक शक्तिशाली राष्ट्र के लिए सिरमौर
तुम्हारी उल्लसित कल्पनाओं में
पृथ्वी तुम्हारी उंगलियों पर नाचता क्रीडा कदुक
ठीक वैसा जैसा 'द ग्रेट डिक्टेटर' में
चैप्लीन ने दिखाया ।"[3]

ज्ञानेंद्रपति के यहां संवेदनात्मक दृष्टि की सघनता अधिक सख्त है और उसमें व्यंग्य का तीखा एहसास भी है। शक्तिशाली राष्ट्रों के सिरमौर व्यक्तियों की 'उल्लसित कल्पनाओं 'में पृथ्वी का गेंद सम बन जाना आज की सबसे बड़ी त्रासदी है। इन काव्यानुभवों में दरअसल कविता बाहय ऐसी परिस्थितियां ही दर्ज मिलती है जिनमें बड़ी शक्तियों की उल्लसित कल्पनाएं बेशुमार ढंग से पंख पसारती है। उनके लिए दूसरे देश और उनके समाज 'क्रीडा कंदूक'जैसे है।इस कविता की आगे की पंक्तियों में विश्व की बड़ी बड़ी शक्तियों की उपनिवेशक दृष्टि का विस्तार से उल्लेख है।

"मैं कहता हूं
चक्रवर्ती के चक्के के नीचे आने को तैयार
मैं एक कवि
पृथ्वी सूक्त के रचयिता वंशज
माते मर्म विमृगवरी
माते ह्रदयमर्पितम
कवि का
पृथ्वी पर चलकर ,उसे रौंदने के लिए
क्षमा मांगने वाले विनतमाथ कवि का उन्नतभाल वंशज
यह पृथ्वी का केवल तुम्हारी है ? ।"[4]

यहां पर कविता है। कवि है ।बहिरंगत: दोनों के प्रतीति विन्यास में मुखरता का स्पर्श है । लेकिन यह सिर्फ कविता नहीं है।यह हमारे भू भाग को धीरे धीरे तिरोभावित होते देख उसको प्रतिरोधित करने वाली मानसिकता है। अतः यह तथ्य भी सिद्ध होता है , कविता सिर्फ एक नहीं है। कवि भी सिर्फ एक नहीं है। कात्यायनी की कविता 'जादू नहीं कविता' में

" स्मृति स्वपन नहीं
आशाएं भ्रम नहीं
जगत मिथ्या नहीं
कविता जादू नहीं
सिर्फ कवि हम ही नहीं ।"[5]

कविता दुनिया भर की चिंताकुल मानसिकताओं को मुखर कर देने वाली वैकल्पिता है। यह कविता मात्र नहीं है। नव वामपंथी कविता में हमारा इतिहास निहित है। हर युग में कविता का इतिहास में बदलने के उदाहरण मिलते हैं ।आज इस भूमिका में कविता को रहना ही पड़ता है क्योंकि हमारा समय परिभाषेयता की सीमाओं को लांघ चुका है। प्रौद्योगिकी विकास की चकाचौंध में हम जरूर उल्लसित होते हैं ।पर उसकी विषमताओं की ओर संकेत करते ही उसकी खूबियां हम पर इस तरह छा जाती है कि मानो हम उसके अधीनस्थ हो गए हैं । लेकिन विषमताएं आखिर विशेषताएं ही है ।प्रौद्योगिकी ने मनुष्य को यंत्रवत मनुष्य बनाया है।प्रौद्योगिकी मनुष्य ने यह तय कर लिया है कि मनुष्य को, उसकी संस्कृति को ,उसके सपनों को अधीनस्थ किया जा सकता है ।सबकुछ अधीनस्थ करने की उपनिवेशक संस्कृति को कविता में सीधा स्थान भले ही ना मिले क्योंकि कविता अपना लोग निर्मित करती है । स्वप्निल श्रीवास्तव की कविता है 'राजा और प्रजा' आख्यान शास्त्र के अवलंब लेकर अधीनस्थ करने की प्रवृत्ति का सरल ढंग से प्रतिपादित किया गया है |

"प्रजा सूइलार गाय है
जो भी चाहे रनों से निचोड़ लें दुध ।" [6]

लोक संदर्भ में गाय और दूध की बात ठीक है । लेकिन दूध का किसी के द्वारा भी दुहा जाना लोक का उल्लंघन करती है। प्रौद्योगिकी की यही एक विषमता है जिसके वैश्वीकरण के संदर्भ में कई आयाम हैं। वैचारिक अराजकता के रहते यह काम आसान हो गया है । भाषा, संस्कृति और लोक का ध्वंस वैश्वीकरण की मूल प्रवृत्ति है ।मुनाफे पर बाजार का विकास उसकी एक अन्य मुख्य प्रवृत्ति हैं। पूंजीनिवेश के माध्यम से परोक्ष कब्जा उसका परम लक्ष्य है। इन्हीं विशेषताओं के बीच हमारा नागरिक जीवन पल्लवित पुष्पित होता है ।हमारे नागरिक बोध को इन विषमताओ ने ग्रस लिया है । पर यह खलनायक झूठा प्रचार यह कर रहा है कि वह दुनिया के लिए चिंतित है। पुराने जमाने में सत्ताधारी शक्तियों के बीच षड्यंत्र चलते थे । आज सभी सत्ताधारी और शक्तिशाली दूसरों की भलाई चाहते हैं ।गुणी प्रतीत होने वाले इस षड्यंत्र का इतिहास वह स्वयं लिख रहा है ।वह इतिहास उसका भी है और हमारा है ।उसके षड्यंत्र के तौर तरीके हैं ।हमारी अराजकता के अनेक आख्यान भी उसमें शामिल हैं। लेकिन नव वामपंथी कविता इस वैश्वीकृत इतिहास के समांतर अपना एक इतिहास रच रही है आज।जिसमें उसे कभी-कभी सख्ती से पेश करना भी पड़ता है। मनुष्य के इतिहास को शब्दों में तब्दील करके जब नव वामपंथी कविता नया इतिहास रचती है तो स्पष्ट है कि वह दूर दूर की बात ही कर रही है ।लेकिन जैसे गंभीर बहसें अनसुनी रह जाती है वैसे कविता को भी नजरंदाज किया जाता है। लेकिन संभवतः कविता का महत्व इस कारण से बढ़ता रहता है। कविता के अवदूत के अंदाज को लीलाधर मंडलोई अपनी 'दीवाना कबीर 'शीर्षक कविता में व्यक्त करते हैं जबकि कविता की अवहेलना की बात से लीलाधर मंडलोई अपरिचित नहीं है ।यह नई संस्कृति का परिणाम है पर कवि का मानना है कि नव वामपंथी कविता नया इतिहास रचने को बाध्य है। तमाम गोल मेजी बहसों में मनुष्यता को भुनाया जाता है और मनुष्य की चिंता का एक असंगत नाटक खेला जाता है। पर कविता ऐसा नहीं कर

सकती है ।इसलिए लीलाधर मंडलोई की यह कविता हमारे समक्ष एक तर्जनी की तरह उपस्थित है -

"आओ खुदा के वास्ते इधर और इनकी बात सुनो दीवाना भी है तो जगती आंखोंवाला
वह जग भी रहा है तो हम सब की खातिर
ना कोई लीडर है वह नाही है दलाल कोई
बल्कि इन दोनों के खिलाफ ही वह बोल रहा।"[7]

ब्रांड संस्कृति में अपना सब कुछ बेचे जाने की प्रक्रिया के प्रति बेसुध पीढ़ी की अराजकता इस कविता में तीखा व्यंग्य है।लेकिन यह व्यंग्य के लिए लिखी गई कविता नहीं है। यह एक कवि की चिंता है। अपनी चिंताकातरता में वह कर्मठता से मुंह नहीं मोड़ता है ।अपनी तर्जनी उठाता है और कहता है

" क्यों बैठे हो ? हुए कैद और जैसे बेजुबान
निकलो तन्हाइयों की धुंध से आगे उधर
खुले मैदान की तरफ कि उधर
देखो एक दीवाना कबीर है कि जो सच बोल रहा है।"[8]

अपनी कविता के केंद्र में लीलाधर मंडलोई ने कबीर को पहचाना है ।कबीर के मिथक को संस्थित करके सच के बोल को कविता में उतारने ही उनका लक्ष्य है।इस बहाने बाजार की कैद में, जंग के नाम पर व्याप्त उपनिवेशवाद संस्कृति की कैद में फंसे, निष्क्रियता के बहाने वैश्वीकरण की उमर कैद में हमेशा के लिए बंद पड़े हमारे समाज के लिए अब एक नए इतिहास की जरूरत को महसूस करते हुए उन्होंने संभवतः यह कविता लिखी है । यह वैश्वीकरण पर लिखी हुई कविता नहीं है। वैश्वीकृत संस्कृति में आकंठ डूबे समाज पर लिखी कविता है। कविता की यह सतर्कता बहुत कम पहचानी जाती है। इसका मुख्य कारण सतर्कता के बावजूद पूरी आबादी की सतर्कहीन संस्कृति या एक अराजक संस्कृति के चंगुल में फंसने से रहा । यह एक सच है।हमारे समय का यह एक और घोर विरोधाभास भी है। हमारे आचरण में ,हमारी बोल में और हमारी देह भाषा में इसको पहचाना जा सकता है ।विष्णु नागर ने अपनी 'धन और शांति ' शीर्षक कविता में हमारी संस्कृति की अराजकता को इस प्रकार व्यक्त किया है-

" धन के बिना एक दिन काम नहीं चलता
जबकि शांति के बगैर
वर्षों चला जाता है । धन जमाने की प्रक्रिया जटिल,
उबाऊ शरीर को तोड़ देने वाली और आत्मा को चींदा देने वाली होती है ।"[9]

यह कविता हमारे अंदर मन को कुरेद रही है और बार-बार सवाल कर रही है कि आखिर हम चाहते क्या है ? हमारी संस्कृति के अंर्तनाटकों का मकसद क्या है ? सर्तकहीनता की अधकचरी स्थितियों के रहते आज भी कविता निरंतर इन सवालों से जूझती है और सर्तक एवं जागरूक होने की नियति अपनी गति समझती है।भूमंडलीकरण और बाजारीकरण की चकाचौंध में आधुनिक मानव संवेदनहीन होता जा रहा है। उनकी दृष्टि अर्थकेन्द्रित हो जाती है और मूल मानवीय संवेदनाओं को वह भूला देता है । आपसी संबंध शायद इसी वजह से बिगड़ जाता है। पहले, प्रेम जैसा भाव जो सबसे मूल्यवान माना जाता था अब दो कौड़ी का ही रह जाता है। प्राचीन संस्कृतियां भूमंडलीयकृत अवसाद में अपनी अस्मिता खो जाने के डर से स्वयं कापंती है ।

" जो भी है नयनाभिराम वह क्रय
मनोहर बिकाऊ
घोर प्रदर्शनी के युग में मत चाहे वस्तु टिकाऊ
महंगा बिको
खरीदो महंगा
दो एक में करो
हटकर बना दूकान यहां पर लोग बाग समाना।" [10]

निष्कर्ष

यह शतश: सही है कि इतिहास के विकल्प के रूप में ही नववामपंथी कविता अवतरित होती है तो उसे यह सिद्ध होता है कि आगे की पीढ़ी के लिए भी यह कविता महत्वपूर्ण विरासत है ।इस कारण से कविता में आने वाली पीढ़ी को लेकर कई प्रकार की आशंकाएं व्यक्त हुई हैं । किसी सामाजिक अध्ययन में, किसी विज्ञान साहित्य में ,किसी नृतत्वशास्त्रीय दस्तावेज में या किसी अर्थशास्त्रीय विश्लेषण में इस तरह की आशंकाएं जब मिलती है तो हमारा कान कभी-कभी सतर्क रहता है ।नव वामपंथी कविता भी ऐसी ही आशंका व्यक्त करती है । यह प्रश्न मुख्य होते हुए कि कविता द्वारा प्रकटित मनुष्य धर्मी समस्त उन्मुखताएं किस हद तक स्वीकृत होती है । फिर भी एक और सच यह है कि कविता आंकड़ों के बल पर जीती नहीं है।नव वामपंथी कविता मनुष्य के लिए जीती है और वह मनुष्य की सचेतना और सतर्कता का उर्वर इतिहास भी रचती है। इसलिए नव वामपंथी कविता आम जनता की कविता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.अंबुज,कुमार.(1983).अतिक्रमण.नई दिल्ली:राधाकृष्ण प्रकाशन.पृ .25

2.श्रीवास्तव, एकांत. (1994).हस्ताक्षर.नई दिल्ली:आधार प्रकाशन. पृ .33

3. ज्ञानेंद्रपति. (1995).यह पृथ्वी क्या केवल तुम्हारी है. नई दिल्ली : किताबघर प्रकशन.पृ.66

4. वहीं – पृ .69

5. कात्यायनी. (2002).जादू नहीं है कविता. नई दिल्ली : आधार प्रकाशन.हरियाणा. पृ.28

6. श्रीवास्तव, स्वप्निल.(2004).राजा और प्रजा. नई दिल्ली: मेधा बुक्स. पृ .27

7. मंडलोई, लीलाधर. (1999).दीवाना कबीर. नई दिल्ली: आधार प्रकाशन. पंचकूला.पृ.58

8. वहीं – पृ .60

9. नागर, विष्णु. (1980)धन और शांति . नई दिल्ली : आधार प्रकाशन.पृ 42

10. शुक्ल, अष्टभुजा. (2012).पद कुपद. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.50